दलित अस्मिता एवं चेतना निर्माण के कार्यक्रमों और गतिविधियों (साहित्यिक सम्मेलनों, संस्थाओं, अकादमियों) का समाजशास्त्र

डॉ0 यशवन्त वीरोदय,

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

दलित अस्मिता एवं चेतना निर्माण में साहित्यिक सम्मेलनों, संस्थाओं, अकादमियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, क्योंकि इन संस्थानों/आयोजनों का नेतृत्व दलित बुद्धिजीवियों के हाथ में होता है और वे अपनी सामाजिक–साँस्कृतिक गतिविधियों को इन संस्थाओं/आयोजनों के द्वारा बखूबी संचालित करते हुए दलित समाज को दशा एवं दिशा देने का काम करते रहते हैं। भारत में इसकी मुकम्मिल शुरुआत डॉ0 अम्बेडकर द्वारा ही होती है। डॉ0 अम्बेडकर के पहले महात्मा 'ज्योतिबा फुले' ने इसकी पहल कर दी थी।

धर्ममूलक विषमता का अन्त करने के लिए 'सत्यशोधक समाज' नामक संस्था की स्थापना अपने आप में एक 'ऐतिहासिक कदम' था। सामाजिक गुलामी सबसे बुरी चीज होती है। इस गुलामी का आधार व्यवस्था द्वारा लोगों को अशिक्षित रखना है, इसीलिए इस गुलामी का अन्त जरूरी है। अज्ञान और अशिक्षा से लड़े बिना भारतीय जनता की मुक्ति असंभव है। इसीलिए महात्मा ज्योतिबा फूले ने 'अज्ञान' और 'अशिक्षा' से लड़ने के लिए तथा दलित समाज में चेतना जागृत करने के लिए 1873 में 'सत्यशोधक समाज' की नींव डाली।

महात्मा ज्योतिबा फुले (1827 से 1890ई0) को स्वयं अपने जीवन में शूद्र होने की वजह से तरह–तरह के अपमान झेलने पड़े थे। ऐसी ही एक घटना 1848 में हुई जब फुले बीस साल के थे। एक ब्राह्मण मित्र का निमंत्रण मिलने पर फुले उसकी बारात में शामिल हुए, कुछ कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने यह जानकर की माली जाति का नीच शूद्र भी उनके बीच है, फुले को इस दुस्साहस के लिए बहुत लताड़ा, गुस्से और अपमान की आग में जलते हुए फुले घर पहुँचे और फफक–फफक कर रोते हुए उन्होंने अपने पिता को सारी बात बताई। धर्म भीरु और गुलाम मानसिकता के पिता ने बेटे को सांत्वना देते हुए कहा–''हम शूद्र जाति के हैं, ब्राह्मणों की बराबरी कैसे कर सकते हैं, उन्होंने तुम्हें मारा–पीटा नहीं, केवल वहाँ से भगा दिया, क्या यही कम उपकार है? पेशवाओं के शासन में इस तरह के अपराधों के लिए हाथी के पैर के नीचे कुचल देने की सजा दी जाती थी।''[1]

इस प्रकार के सामाजिक अपमान की मर्मान्तक पीड़ा ने महात्मा ज्योतिबा फुले की आँखें खोल दी और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सामाजिक गुलामी सबसे बुरी चीज है। ब्राह्मणवादी–जातिवाद भारतीय समाज की एकता का सबसे बड़ा दुश्मन है। इस गुलामी का आधार ब्राह्मणवादी व्यवस्था द्वारा लोगों को अशिक्षित रखना है। अज्ञान और अशिक्षा से लड़े बिना जनता की मुक्ति असंभव है। इस हेतु फुले ने अपनी इक्कीस साल की उम्र में (1848ई) पहली कन्या पाठशाला खोलकर सामाजिक आन्दोलन की शुरुआत की। उन्होंने सामाजिक जागृति हेतु और जो भी महत्वूर्ण कार्य सम्पन्न

किए उनको 'प्रेमचंद पातंजलि' ने अपने महत्वपूर्ण लेख 'महात्मा फुले : हमारे प्रेरणा–ोत' में निम्न सोलह महत्वपूर्ण बिन्दुओं में समेटने का प्रयास किया है–

1. उन्होंने सन 1848 में पहली कन्या पाठशाला खोली और सन् 1851 में अछूतों के लिए पहली पाठशाला खोली।
2. उन्होंने हिन्दू धर्म के शूद्रों तथा अतिशूद्रों के कष्टों तथा दुखों और यातनाओं को अभिव्यक्ति दी।
3. अपना कुआं अछूतों के लिए खोल दिया।
4. विधवा–विवाह का समर्थन कर सन् 1864 में विधवा–विवाह सम्पन्न कराया।
5. विधवाओं के अवैध बच्चों के लालन–पालन के लिए सन् 1863 में बाल हत्या प्रतिबंधक गृह खोला।
6. विधवाओं के गुप्त तथा सुरक्षित प्रसूति के लिए प्रसूतिगृह खोला और उस प्रसूतिगृह में जन्में काशीबाई नामक विधवा के बच्चे को गोद लिया।
7. ब्राह्मण विधवाओं के मुंडन को रोकने के लिए नाइयों को संगठित किया।
8. बाल–विवाह का विरोध किया।
9. धर्ममूलक विषमता का उन्मूलन करने के लिए सन् 1873 में सत्यशोधक समाज की नींव डाली।
10. शादी ब्याह में समझ में न आने वाले संस्कृत मंत्रों के बदले मराठी में सर्वबोधगम्य मंगल मंत्र बनाए और उनका प्रचार किया।
11. राजगढ़ स्थित शिवाजी महाराज की समाधि खोजकर उसे सुचारु रूप दिया।
12. सन् 1879 में बम्बई में मिल–मजदूरों का पहला संगठन बनाया और मजदूर आन्दोलन में श्री नाराण मेघाजी लोखंडे नामक अपने साथी की विशेष रूप से सहायता की।
13. जमींदारों के जुल्मों से पीड़ित किसानों की मदद की।
14. किसानों की दुर्दशा की ओर 'ड्यूक ऑफ कनाट' तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ध्यान दिलाया।
15. ग्रंथ लिखकर शूद्रों तथा अतिशूद्रों में जागृति की और उन्हें वरिष्ठ वर्गों की मानसिक दासता से मुक्त करने का प्रयास किया।
16. अपनी पत्नी को घर पर पढ़ा–लिखाकर उसे अध्यापिका बनने योग्य बनाया जिससे वह पहली भारतीय अध्यापिका बनीं।

ये सभी कार्य उन्होंने उस समय किए जब इनको करने की बात तो दूर रही, इनके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था।''[2]

भारत में किसान–मजदूर, दलित–स्त्री की मुकम्मिल आजादी के लिए एक मजबूत वैचारिक और सामाजिक आन्दोलन खड़ा करने वाले वह पहले व्यक्ति थे, उन्होंने समाज–व्यवस्था, धर्म–संस्कृति, शिक्षा का महत्व और सत्ता का उससे संबंध, अर्थ और कृषि व्यवस्था में उत्पादन संबंध, दलित–स्त्रियों की एक सी दयनीय स्थिति आदि, अपने समय के सभी महत्वपूर्ण विषयों पर व्यवस्थित मौलिक विचार दिए। उनके विचार प्रगतिशील और क्रान्तिकारी थे, जिसके आधार पर वह समाज में आधारभूत बदलाव लाना चाहते थे।

फुले ने जो जातिवाद–विरोधी वैचारिक और सामाजिक आन्दोलन विकसित किया वह अब तक के सामाजिक परिवर्तन के सारे अभियानों से अलग तरह का था। आम्वेट और देशपाण्डे के हवाले से ब्रजरंजन मणि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ''फुले जाति व्यवस्था के पहले

ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धान्तकार थे (आम्वेट 1994, जी0वी0 देशपाण्डेय 2002) ××× भारतीय समाज की उनकी समझ मूलतः द्वैवर्णिक थी–'ब्राह्मण' और 'शूद्र–अतिशूद्र'। उनकी नजर में मेहनतकश लोग जो समाज के लिए साधन और धन पैदा करते हैं, वह शूद्र–अतिशूद्र के दायरे में आते हैं।''[3] फुले के आन्दोलन का समाशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए ब्रजरंजन मणि लिखते हैं कि ''फुले का 'ब्राह्मण' और 'शूद्र–अतिशूद्र' का द्वैवर्णिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण, यूरोपीय पूँजीवाद समाज में लगभग उसी समय विकसित 'बुर्जुवा' और 'सर्वहारा' के मार्क्सवादी विश्लेषण के बहुत करीब हैं। जाति व्यवस्था का वर्गीच चेतना की दृष्टि से विश्लेषण का काम क्रान्तिकारी था। फुले का विचार था कि इस चेतना के आधार पर जातियों को मिटाकर ही 'जाति–विहीन', 'वर्ग–विहीन' समाज की रचना की जा सकती है।''[4]

फुले ने 1855 में 'तृतीय रत्न' (तीसरी आँख) नाम से नाटक लिखा, जिसे 'ब्रजरंजन मणि' ने आधुनिक भारत का पहला नाटक करार दिया है। इसमें शिक्षा के माध्यम से तमाम 'शूद्र–अतिशूद्र' जातियों को वर्गीय रूप से संगठित होने का संदेश है। 1873 में फुले की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक गुलामगिरी प्रकाशित हुई। बकौल ब्रजरंजन मणि ''गुलामगिरी तो दलित–दमित वर्ग की मुक्ति का मुकम्मिल घोषणापत्र ही है, जाति प्रथा को पहली बार ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है।''[5] इससे पहले की जितनी भी किताबें इस विषय पर लिखी गयी थीं, उनमें वर्ण और जाति को अनादि काल से चली आ रही सनातनी समाज व्यवस्था के रूप में देखा गया। फुले ने अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' में इस पुरानी अवधारणा को नकार दिया है, उन्होंने दिखाया है कि कैसे आम जनता को आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक बेड़ियों में जकड़ने के लिए एक खास समय और खास स्थितियों में जाति व्यवस्था की व्युत्पत्ति हुई। बकौल ब्रजरंजन मणि ''गुलामगिरी में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि कैसे असमानता के सामाजिक दर्शन को धर्म का रूप दिया गया है।''[6] असमानता के सामाजिक दर्शन को और उसके पूरे समाजशास्त्र को समझने के बाद फुले ने शोषण मुक्त समाज की एक ठेठ भारतीय विचारधारा विकसित की जिसके कारण वे उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत बने।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में तथा बीसवीं शताब्दी में एक और महान विचारक ई0वी रामास्वामी नायकर पेरियार (सन् 1879–1973ई0) अपने तार्किक चिंतन 'तर्कबुद्धिवाद' और 'आत्मसम्मान आन्दोलन' के साथ चली आ रही प्रतिरोधी सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधि में अपनी तरह से इजाफा करते हैं। पेरियार के सिद्धान्तों एवं उनके द्वारा चलाए गए आन्दोलनों की आधारशिला है–'तर्कबुद्धिवाद'। अपने 'तर्कबुद्धिवाद' के बल पर पेरियार ने निष्कर्ष निकाल कि ''एक कुतर्कशाली अल्पमत ने बहुमत का शोषण बिना वजह किया तथा हमेशा अपने अधीनस्थ बनाए रखने के लिए कार्य किया।''[7] इसलिए वे चाहते थे कि शोषित वर्ग उठे और अपनी दयनीय स्थिति पर विचार करे। जब तक शोषित वर्ग के लोग अपनी तर्कबुद्धि का इस्तेमाल नहीं करेंगे, तब तक वे यह नहीं जान पाएंगे कि मुट्ठीभर लोगों द्वारा उनका शोषण किया जा रहा है। बकौल पेरियार ''तर्कबुद्धिवाद से जन्मा ज्ञान ही असली ज्ञान है। क्या कोई किताबे पढ़ने से ही ज्ञानी बन सकता है? क्या किसी चीज को बार–बार रटने से कोई बुद्धिमान बन सकता है? ऐसा कैसे हो सकता है कि एक मानसिक रूप से सम्पन्न शिक्षित व्यक्ति एक पत्थर को ही भगवान माने तथा उसके समक्ष दण्डवत् प्रणत रहे? क्यों एक महान विद्वान तथा विज्ञान का विशेषज्ञ अपने ऊपर गंगाजल छिड़ककर अपने आपको पापों से मुक्त करे? क्या एक सीखे हुए विज्ञान तथा

गौ–मूत्र एवं गोबर के मिश्रण के छिड़काव में आपस में कोई संबंध है?''[8]

पेरियार ने गैर–ब्राह्मणों को ब्राह्मणों की गुलामी से छुटकारा दिलाने एवं उन्हें सम्मानजनक स्थान तक पहुँचाने के लिए 'आत्म सम्मान आन्दोलन' अर्थात 'ब्लैक शर्ट मूवमेन्ट' चलाया जो, दक्षिण भारत में आज भी जीवित है। वी0 गीता और एस0वी0 राजदुरई ने 'आत्म–सम्मान' आन्दोलन का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि ''आत्मसम्मान आन्दोलन एक ऐसा तर्कवादी आन्दोलन था जो कि एक जातिविहीन समाज चाहता था, जो कि जनसमूह में पूर्ण समानता पर आधारित हो, जहाँ सामाजिक कुरीतियों का अंत हो जो धर्म तथा ईश्वर जैसे अन्धविश्वासों तथा भ्रामक धारणाओं से मुक्त हो। इस आन्दोलन का एक अन्य उद्देश्य स्त्रियों के लिए संपूर्ण समानता, शिक्षा एवं रोजगार और सम्पत्ति के अधिकार के लिए पुरुषों के साथ समान अवसर प्रदान करना था। इन्हीं विशेषताओं के कारण आत्मसम्मान पार्टी को 'समधर्म पार्टी' भी कहा जाता था।''[9]

पेरियार द्वारा 1929 के 'प्रथम आत्मसम्मान प्रांतीय सम्मेलन' में कई प्रस्ताव पारित किए गए–जैसे छूआछूत की समाप्ति, अन्तर्जातीय विवाह, व्यक्ति के नाम के पीछे जाति लगाने की प्रथा का उन्मूलन, स्त्रियों को पुरुषों के समान सम्पत्ति का अधिकार प्रदान करना, विधवा–विवाह, दहेज प्रथा उन्मूलन इत्यादि। इसने ब्राह्मणों के निहित स्वार्थों को आघात पहुँचाया। इतना ही नहीं पेरियार ने ब्राह्मणवाद, जाति, कांग्रेस, हिन्दू धर्म, ईश्वर तथा स्त्रियों की अक्षमता के विरोध के प्रतीक रूप में बाकी की पूरी जिन्दगी काली कमीज़ पहनी, इसी कारण इसे 'ब्लैक शर्ट मूवमेन्ट' के रूप में भी जाना जाता है।

इसी बीच केरल के एक महत्वपूर्ण चिंतक श्री नारायण गुरु (1854–1928ई0) अपनी वैचारिक गतिविधियों के द्वारा सामाजिक जागृति करते नजर आते हैं। वे मूलतः एझवा (अस्पृश्य) जाति से थे। नारायण गुरु के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए इतिहासकार 'बी0एल0 ग्रोवर एवं यशपाल' लिखते हैं ''नारायण गुरु ने केरल तथा केरल के बाहर कई स्थानों पर एस0एन0डी0पी0 (श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्) नाम की एक संस्था तथा उसकी शाखाएं स्थापित कीं। श्री नारायण तथा उनके सहयोगियों ने 'एझवा' वर्ग के उत्थान के लिए दो बिन्दु का कार्यक्रम बनाया, पहला था अपने से नीची जातियों के प्रति अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त करना। इसके अतिरिक्त नारायण गुरु ने कई मंदिर बनवाए जो सभी वर्णों के लिए खुले थे। इसी प्रकार उन्होंने विवाह संस्कार, धार्मिक पूजा तथा अन्त्येष्टि आदि के कर्म काण्डों को सरल बना दिया। उन्होंने महात्मा गाँधी की भी निम्न जातियों के प्रति केवल मौखिक सहानुभूति प्रकट करने के लिए आलोचना की। उन्होंने गाँधी के चतुरवर्णीय व्यवस्था में विश्वास रखने के लिए उनकी आलोचना की क्योंकि यह चतुरवर्णीय व्यवस्था ही जाति–पांति तथा अस्पृश्यता को जन्म देने तथा बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। उन्होंने एक नया नारा दिया 'मानव के लिए एक धर्म, एक जाति, एक ईश्वर'।''[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दलित समाज के उत्थान हेतु भारत के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से जो सामाजिक–सास्कृतिक–धार्मिक–राजनैतिक आन्दोलन खड़े हुए, उन्होंने अपनी वैचारिक गतिविधियों द्वारा तमाम किस्म की व्यवस्थावादी दलीलों को नकार दिया और आगे चलकर डॉ0 अम्बेडकर के कुशल नेतृत्व में ही इस आन्दोलन ने अखिल भारतीय स्तर पर अपना स्वभाव और चरित्र ग्रहण किया तथा एक सुदृढ़ शोषण रहित मानवतावादी समाज की स्थापना की नींव रखी। बकौल डी0 नागराज ''दलित आन्दोलन अपने वजूद के लिए बाबा साहेब का कई तरह से ऋणी है.....दलित आन्दोलन ऐसी मनःस्थिति की देन है जो अछूतों की समस्याओं से निपटने के गांधीवादी मॉडल के दृढ़तापूर्वक नकार में

विश्वास रखती है और इसी नज़रिए ने दलित आन्दोलन की रूप–रेखा और धारणाओं को आकार दिया है।''[11] डॉ0 ज्ञान सिंह बल ने अपने महत्वपूर्ण लेख 'दलित चिन्तन के वैचारिक आयाम' में दलित–दर्शन का मनोरथ निश्चित करते हुए डॉ0 अम्बेडकर के इस कथन को उद्धृत किया है–''दर्शन शास्त्र का कार्य विश्व को पुनः निर्मित करना है न कि अपना समय यह बताने में बर्बाद करते जाना है कि यह संसार कैसे आरंभ हुआ''[12] इसके बाद डॉ0 ज्ञान सिंह बल, डॉ0 अम्बेडकर के 'इतिहास बोध' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं–''भारत के इतिहास तथा संस्कृति की गहन समझ के कारण ही अम्बेडकर ने ब्राह्मणवाद को, भारतीय समाज को जटिल बनाने तथा भारतीयों की अधिकतर समस्याओं के लिए जिम्मेदार माना। भारतीय इतिहास के बोध के मद्देनज़र इस व्यवस्था को अम्बेडकर अति–विस्तृत धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अर्थों में परिभाषित करते हैं, इस कड़ी में वे पूँजीवाद तथा ब्राह्मणवाद को मजदूरों के दो दुश्मन घोषित करते'[13] हैं। आज का दलित विमर्श भी राष्ट्रीय हित में 'पूँजीवाद' और 'ब्राह्मणवाद' इन दोनों को खतरनाक मानता है।

जब डॉ0 अम्बेडकर यह घोषित करते हैं कि 'दर्शनशास्त्र का कार्य विश्व को पुनः निर्मित करना है' तो प्रश्न उठता है कि भारतीय संदर्भ में नई समाज व्यवस्था के निर्माण हेतु उन्होंने क्या किया? गेल ओमवेट की मान्यता है कि नई समाज–व्यवस्था के निर्माण में ''प्रतीक स्वरूप भारतीय संविधान के निर्माण में उनकी (डॉ0 अम्बेडकर की) भूमिका को लिया जा सकता है।''[14] नयी समाज–व्यवस्था के अपने दर्शन के सार के रूप में अम्बेडकर स्वयं भी अक्सर स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा के फ्रांसीसी क्रान्ति के महान उद्घोष को प्रस्तुत करते थे। गेल ओमवेट अपने समाजशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर 'भाईचारा' (थ्तंजमतदपजल) शब्द पर आक्षेप करते हुए इसमें 'पुरुसत्व' की छाया देखती हैं। इसीलिए वे 'भाईचारा' के स्थान पर सामुदायिकता (ब्वउउनदपजल) शब्द के प्रयोग पर जोर देती हैं। बकौल गेल ओमवेट ''भाईचारा (थ्तंजमतदपजल) शब्द में एक बड़े विश्व परिवार से जुड़ाव का भाव है पर चूंकि इससे पुरुषत्व की गंध आती है, इसलिए मैं इसकी जगह सामुदायिकता (ब्वउउनदपजल) शब्द का प्रयोग करना चाहूँगी, जिसे भाईचारे के समान अर्थों में ही लिया जा सकता है। स्वतंत्रता, समानता तथा सामुदायिकता नई सहस्राब्दी के लिए मानव दर्शन के तीन सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं।''[15] डॉ0 अम्बेडकर के लिए दलित–जागृति सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य था, इसलिए वे प्रबोधन (म्दसपहीजमदउमदज) को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं। यही वह महत्वपूर्ण कारण है जिसके चलते डॉ0 अम्बेडकर सबसे पहले 'बहिष्कृत भारत' नामक पत्र निकालते हैं उसके बाद वे 'जनता' पर आते हैं और अंततः 'प्रबुद्ध भारत' पर। ऐसा इसलिए कि वे ही सही मायने में भारत को समता स्वतंत्रता और सामुदायिकता से लैस और प्रबुद्ध देखना चाहते थे।

अगर सर्वस्वीकृत अवधारणा बनायी जाय तो देखा जा सकता है कि दलित चेतना की अवधारणा में एक अन्तर्निहित गतिशीलता है। इसे जड़ रूप में कतई नहीं समझा जा सकता। वर्ण–जाति वर्चस्ववादी हिन्दू धर्म की स्वघोषित महानता के छद्म को भेदते हुए 'फुले–अम्बेडकर युगीन' दलित चेतना, सामाजिक अवरोधों को तोड़ते हुए, शोषण मुक्त समाज की एक ठेठ भारतीय विचारधारा विकसित करती जान पड़ती है। निश्चय ही यदि दलितों के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनैतिक आधार (वबपंस. ब्नसजनतंस.च्वसपजपबंस ैजंदक) खड़ा करने के सवाल पर विचार किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्नीसवीं सदी में फुले और बीसवीं सदी में डॉ0 अम्बेडकर जितना बड़ा बौद्धिक सांस्कृतिक फलक किसी दूसरे भारतीय विचारक का नहीं था। बीसवीं सदी में डॉ0

अम्बेडकर 'शोषण मुक्त समाज की एक ठेठ भारतीय विचारधारा' लेकर आते हैं और 'दलित जागरण हेतु' 15 अगस्त 1936 को 'बहिस्कृत हितकारिणी सभा', 19 जुलाई 1942 को 'अखिल भारतीय शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन', 8 जुलाई 1945 को 'पीपल्स एज्युकेशन सोसाइटी' 4 मई 1955 को 'डिप्रेस्ड क्लास एज्यूकेशन सोसाइटी' और 'भारतीय बौद्ध महासभा' का गठन करते हैं।''[16] दलितों की मुकम्मिल मुक्ति की अवधारणा का जितना बड़ा बौद्धिक–साँस्कृतिक फलक डॉ0 अम्बेडकर का था उतना बीसवीं शताब्दी में किसी का नहीं था। इन्होंने अपनी संस्थाओं द्वारा दलितों को अस्मिता भान कराकर व्यवस्था के खिलाफ लामबन्द करने का काम किया।

जिस समय डॉ0 अम्बेडकर राष्ट्रीय स्तर पर अपना दलित अस्मिता अभियान चला रहे थे, उस समय उत्तर भारत का नेतृत्व स्वामी अछूतानन्द जी कर रहे थे। महेन्द्र प्रताप राना के अनुसार उन्होंने ''दिल्ली में समाज सुधारक जाटव वीर मंत्री देवी दास, जानकी दास और जगतराम के साथ मिलकर 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना की और 'अछूत' नाम से एक मासिक पत्रिका का हिन्दी में प्रकाशन शुरू किया। ..... दलित सम्मेलनों के माध्यम से ये सम्पूर्ण भारत में जनचेतना संचार किए। जाटव महासभा के उप प्रधान बाबू हरिलाल बोदी लाल ने सन् 1917 में स्वामी जी की पुस्तक 'हरिहर भजन माला' का आगरा से प्रकाशन कराया।''[17] स्वामी जी के अभियानों तथा उनके द्वारा सृजित जागरण गीतों ने हिन्दी क्षेत्र की दलित जनता में अभूतपूर्व दलित जागृति का काम किया, और स्वामी अछूतानन्द के लेखन से ही आधुनिक काल में हिन्दी दलित साहित्य की नींव पड़ी।

अब तक की धारणा यह रही है कि हिन्दी में आधुनिक दलित साहित्य का आरम्भ 1914 में प्रकाशित 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' से ही मानी जानी चाहिए। क्योंकि उत्तर भारत में किसी भी दलित बौद्धिक को प्रिंट संस्कृति में प्रथम प्रवेश 1914 में प्रकाशित 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत कि शिकायत' से होती है। 1977 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में डॉ0 राम विलाश शर्मा ने इस कविता को उद्धृत किया है। ''मैनेजर पाण्डेय इसे दलित चेतना की पहली कविता मानते हैं।''[18] हीराडोम के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। चमनलाल ने अपने एक लेख में उन्हें वाराणसी का बताया है।[19] इसके पीछे मैनेजर पाण्डेय जैसे साहित्यकारों का तर्क यह है कि 'स्वामी अछूतानंद हरिहर (1879–1933 ई0) का रचना काल 'हीरा डोम' से पहले ही शुरू हो जाता है लेकिन कोई रचना प्रकाशित न होने के कारण वे हीरा डोम के बाद के दलित साहित्यकार ठहरते हैं। बकौल मैनेजर पाण्डेय ''आज के जमाने में रचना का लिखा जाना काफी नहीं है, साहित्य बनने के लिए रचना का पाठक के पास पहुँचना भी जरूरी है, पाठक के पास पहुँचने के लिए उसे प्रिंट संस्कृति से गुजरना पड़ता है। इस प्रक्रिया तक जिन लेखकों की पहुँच नहीं होती उनका लेखन भविष्य की निधि भले ही हो लेकिन वह वर्तमान में साहित्य नहीं हो पाता।''[20] यहाँ यह प्रश्न उठना वाजिब है, क्या किसी रचना को केवल इस तर्क के आधार पर बाद का ठहराया जा सकता है कि–'यह रचना/कृति/रचनाकार प्रकाशित नहीं है' तो फिर हम 'संत साहित्य' के बारे में क्या धारणा बनायेंगे? मध्यकाल का संत साहित्य या यूँ कहें कि समूचा 'भक्ति साहित्य' केवल पाण्डुलिपियों में ही सुरक्षित रहा और बहुत बाद में 'प्रिंटींग मशीन' के आविष्कार के बाद प्रकाशित हुआ, तो क्या बाद में प्रकाशित होने के कारण संत साहित्य या भक्ति साहित्य बहुत बाद ठहरता है? आखिर प्रकाशन काल का रचनाकाल से क्या मतलब? सही बात यह है कि जिस प्रकार संत कवियों का रचनाकाल रचना के बाद में प्रकाशित होने के बाद भी आधुनिक काल से

पहले का है और वे पहले के कवि हैं, ठीक उसी प्रकार स्वामी अछूतानन्द का रचनाकाल 'हीरा डोम' के पहले का है, और वे आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य के प्रथम कवि हैं। इस आधार पर 'हीरा डोम' स्वामी अछूतानन्द के बाद के कवि ठहरते हैं, और उनकी रचना 'अछूत की शिकायत' स्वामी अछूतानन्द की रचना के बाद की रचना ठहरती है।

'अछूत की शिकायत' नामक यह कविता भोजपुरी बोली में रचित गेयात्मक कविता है, इसमें दलित हृदय की वास्तविक पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। हीराडोम और स्वामी अछूतानन्द की कविताएँ इस बात की गवाही देती हैं कि निर्गुण संत आन्दोलन और वर्तमान दलित साहित्य के बीच जो चार–पाँच सौ वर्षों का अन्तराल है उसमें यह वर्ग पूरी तरह निष्क्रिय नहीं था। वे मौखिक परम्परा में ही सही अपनी सर्जनाओं को जारी रखे हुए थे। उनमें से ढेर सारी लुप्त हों गयी लेकिन अब भी लोकगीतों तथा जातीय गाथाओं के रूप में सुरक्षित हैं।

'अछूत की शिकायत' नामक इस कविता में एक ओर गहरी करुणा और विषाद है दूसरी ओर इतना ही गहरा व्यंग्य विधान है, यह करुणा, विषाद एवं व्यवस्था के प्रति व्यंग्य पूरी कविता में आदि से लेकर अंत तक छाया हुआ है जिसे बड़ी कुशलता के साथ 'हीराडोम' जी ने काव्यात्मक शब्द बन्ध (च्वमजपब क्पबजपवद) में प्रस्तुत किया है। जो लोग हिन्दी दलित कविता पर अनगढ़ होने का आरोप लगाते हैं उन्हें दलित चेतना की इस आरंभिक कविता को देखना चाहिए जो गेयात्मक एवं संवेदनात्मक है। अपने पाठ और अर्थ को लेकर यह कविता कहीं कोई ऐसी दुविधा नहीं खड़ा करती कि जहाँ विद्वानों को बहस करने की जगह मिल सके।

कविता की पहली पंक्ति में ही बड़ी विडम्बना छुपी हुई है–

''हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी
हमनी के सहेबे से विनती सुनाइबि
हमनी के दुख भगवनओ न देखता जे
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि''

हीरा डोम की इन पंक्तियों में दो बातें यथार्थ होती हैं–

(1) दलित समाज 'रात–दिन' दुःख से पीड़ित है अर्थात किसी व्यक्ति के जीवन में दुख या विडम्बना हमेशा नहीं रहती लेकिन दलित आजीवन दुख और विडम्बना ही झेलता है।

(2) समाज के प्रभुवर्ग या सरकारी अमला वर्ग से विनती (।चचमंस) करती हुई यह कविता यह स्पष्ट कर देती है कि इस अपील की कहीं कोई सुनवाई नहीं है। ईश्वर भी इस क्लेष और पीड़ा को नहीं हर सकता।

इस कविता के आदि और अन्त के बीच हीरा डोम के जीवन के अनेक खण्ड दृश्य अन्तर्कथाएँ (।दमबकवजमे) जुड़े हुए हैं। मसलन, 'हीरा डोम' पादरी की कचहरी में जाकर, धर्म परिवर्तन करके 'रंगरेज' बन जाने के रूप में अपने आक्रोश को व्यक्त करता है लेकिन उसके बाद तुरन्त ही टिप्पड़ी करता है कि–इसके बाद वह अपना मुँह कैसे दिखाएगा? यह तो एक खण्ड दृश्य हुआ अब दूसरा खण्ड दृश्य देखिए, जिसमें कवि ने बताया है कि इस समाज में श्रेष्ठ कौन है? जो भीख माँगता है, जो लाठी–भाला चलाता है, जो डाण्डी मारता है, कविता बनाता है, (भाट) कोर्ट कचहरी में दलाली करता है, लेकिन अपने खून–पसीने की कमाई करने वालों को वह हेय दृष्टि से देखता है–

''बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजां,
ठकुरे के लेखे नहिं लउरी चलाइबि।
सहुआ के लेखे नहिं डांडी हम मारबजां

अहिरा के लेखे नहिं गइया चराइबि
भंटऊ के लेखे न कवित्त हम जोरबजां,
पगड़ी न बाँधि के कचहरी में जाइबि।
अपने पसिनवा कै पइसा कमाईबजाँ,
घर भर मिलि जुलि बांटि–चोंटि खाइबि।''[21]

आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य की यह आरम्भिक कविता, प्रत्यक्ष रूप से श्रम को प्रतिष्ठित करने वाली, कविता है। इस कविता का एक और 'खण्ड दृश्य' अत्यंत महत्वपूर्ण है जो ईश्वर को एक 'वर्गीय धारणा' मानकर उसके सामन्ती वैभव को नष्ट करती है और अवतारवाद का खण्डन करती है–

''खंभवा के फारि पहलाद के बचवले जां
ग्राह के मुंह से गजराज के बंचवले।
धोती जुरयोधना के भइआ छोरत रहै,
परगट होके तहां कपड़ा बढ़वले।
कहवाँ सुतल बाटे सुनत न बाटे अब
डोम जानि हमनी के छुए से डेरइले।''[22]

इस कविता में 'ईश्वर' के प्रति आदर का भाव नहीं है। कवि ने 'कहवाँ सुलत बाटे' शब्द का प्रयोग किया है जो, भोजपुरी में निरादर की दृष्टि से देखा जाता है यदि इन शब्दों के स्थान पर **'कहवाँ सुतल बानी'** का प्रयोग होता तो यह आदर सूचक माना जाता लेकिन कवि ने 'सुतल बाटे' शब्द का प्रयोग कर ईश्वर की भव्यता को तोड़ा है और 'ईश्वर डोम को छूने से डरता है' यह कहकर कवि ने दीनबन्धु की उसी छवि को भी तोड़ दिया है। बकौल मदन कश्यप ''यह हीरा डोम ही हैं जो ईश्वर को डरपोंक कहते हैं और प्रकारान्तर से उसे वर्गीय हितों का रक्षक मानते हैं।''[23]

'हीरा डोम' के अपने जीवन के ये खण्ड–दृश्य और अन्तर्कथाएँ गहरी विडम्बनाओं से संपृक्त हैं यदि दलित कवि हीरा डोम का जीवन इतना विडम्बनापूर्ण न होता तो सम्भव है इस कविता का स्वर भी कुछ दूसरा ही होता। यह 'स्थिति–विपर्यय' ही सम्पूर्ण प्रसंग को अत्यन्त गंभीर और करुण बना देती है। जिससे एक मायने में त्रासदी की सृष्टि होती होती है।

यह आधुनिक दलित कवि हीराडोम के जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं, विडम्बनाओं का 'शोकगीत' है जिसमें करुणा एवं व्यंग्य के माध्यम से कवि ने अपने जीवन को व्यक्त करने का प्रयास किया है। अपने जीवन के किसी विशेष मोड़ पर किसी साथी के बिछुड़ जाने या संतान के मर जाने पर 'शोकगीत' तो लिखे गए लेकिन पूरे जीवन तथा पूरे समाज पर लिखा जाने वाला यह अपने तरह का विशिष्ट 'शोकगीत' है। ''हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'निराला' ने 9 अक्टूबर 1934 को अपनी पुत्री के मरने पर एक शोकगीत लिखा–'सरोज स्मृति', लेकिन जिस व्यक्ति और समाज का पूरा जीवन ही विडम्बना का शिकार हो, जिसमें एक व्यक्ति अपने पूरे समाज के साथ त्रासदी झेलता हो ऐसे विषय पर 'शोकगीत' नहीं लिखे गए हैं। आधुनिक काल में आकर हिन्दी साहित्य का आरंभिक दलित कवि इस विषय पर अपना चलाता है और यह कविता हिन्दी साहित्य का प्रथम सामाजिक 'शोकगीत' बन जाती है।

'अछूत की शिकायत' पाठकों को गहरे आधार पर संवेदनात्मक' बना देती है। संवेदना गहरे अर्थ में भोगे हुए यथार्थ से संबद्ध होती है। फलस्वरूप पाठक आत्मान्वेषण की प्रक्रिया से जुड़ जाता है, उसे लगता है कि मानो युग की सम्पूर्ण विषमताएं, विद्रूपताएँ और विसंगतियाँ इस कविता में पूंजीभूत हो गयी हैं। एक तरह से यह हीरा डोम की अपनी त्रासदी भी है और युग की त्रासदी भी। त्रासदी का माने यहाँ अरस्तू द्वारा निर्धारित परिभाषा से नहीं है बल्कि त्रासदीय अन्तर्दृष्टि (ज्तंहपब अपेपवद) से है।

उपर्युक्त विवेचन से इस कविता के विषय में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलकर सामने आ रहे हैं–

1. 'हीरा डोम' आधुनिक हिन्दी के प्रारम्भिक दलित कवियों में से हैं।
2. यह भोजपूरी में रचित गेयात्मक कविता है।
3. आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य में श्रम को प्रतिष्ठित करने वाली कविता है।
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य की यह ऐसी कविता है जो ईश्वर को वर्गीय अवधारणा मानती है और उसके सामन्तीय वैभव और अवतारवाद का खण्डन करती है।
5. आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य का एक 'शोकगीत' है।

आधुनिक काल में जहाँ डॉ0 अम्बेडकर सम्पूर्ण भारत में दलित आन्दोलन की लहर फूँकते हैं, वहीं भारत के विभिन्न प्रदेशों में भी कई विचारकों ने दलितों में जागृति पैदा करने की भरपूर कोशिश की है। बीसवीं सदी के आरम्भ में उत्तर भारत में दलित जागरण की जो सुगबुगाहट शुरू हुई उसे स्वामी अछूतानन्द हरिहर की देन माना जा सकता है। वे वास्तव में उत्तर भारत में दलित मुक्ति के पुनर्जागरण पुरुष थे।

स्वामी अछूतानन्द का जन्म 6 मई 1879 ई0 में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के सौरिस गाँव में हुआ था। ये दलित वर्ग में उत्पन्न हुए थे। इनका बचपन का नाम हीरा लाल था। इनके पिता अंग्रेज सेना में कार्यरत थे, जिसके कारण उन्हें पढ़ने की सुविधा मिल सकी। 14 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, पंजाबी, तथा बंग्ला भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया तथा आर्य–समाजियों के साथ रहते हुए उन्होंने संस्कृत, गुजराती, मराठी आदि भाषाएँ भी सीख लीं। इनका विवाह इटावा की रहने वाली 'दुर्गावती' से हुआ जिससे तीन पुत्रियाँ हुईं। 20 जुलाई 1933 को 54 वर्ष की अवस्था में इनका देहावसान 'वैनाझावर ईदगाह कानपुर' में हो गया।

स्वामी अछूतानन्द पहले आर्यसमाजी थे, स्वामी सच्चिदानन्द ने इन्हें अपना शिष्य बनाया था। 1905 में ये अजमेर में आर्यसमाज में दीक्षित हुए व इनका नाम हरिहरानन्द पड़ा। आर्य समाज के माध्यम से दलित मुक्ति का रास्ता न खुलते देखकर 1912 में आर्यसमाज छोड़ दिया और दिल्ली जाकर 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना की तथा 1912 से 1917 तक स्वामी अछूतानन्द हरिहर बनकर आर्यसमाज की पोल खोली। 1921 में अछूतानन्द हरिहर ने आर्यसमाजी पं0 अखिलानन्द को दिल्ली में शास्त्रार्थ में पराजित किया।

1922 में उन्होंने विराट अछूत जाटव सम्मेलन का आयोजन किया और अपने समाज के लिए 'आदि हिन्दू' शब्द की घोषणा की। 1925 में उन्होंने हिन्दी मासिक 'आदि हिन्दू' का कानपुर से प्रकाशन करना शुरू किया तथा दिल्ली, पंजाब, हरियाणा आदि अनेक प्रांतों में 'आदि हिन्दू' सम्मेलन का आयोजन किया।

1932 में अछूतानन्द हरिहर ने 'आदि हिन्दू सभा' का नाम बदलकर 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' कर दिया। 1930–32 ई0 में जो 'गोल मेज सम्मेलन' हुआ उसमें स्वामी अछूतानन्द हरिहर ने सैकड़ों टेलीग्राम इस पक्ष में लंदन भिजवाए कि 'अछूतों के प्रतिनिधि गाँधी जी नहीं डॉ0 अम्बेडकर हैं।'

स्वामी जी साहित्य सत्ता (मीडिया, कला, नाटक) को मुक्ति का आधार मानते थे। चमन लाल के अनुसार ''इनकी जो रचनाएँ इनके जीवन काल में प्रकाशित हुँई उनमें शम्बूक मुनि (नाटक) रामराज्य न्याय (नाटक) मायानन्द बलिदान, परखपाद, बलिछलन (अपूर्ण) शामिल है। उनकी अन्य रचनाओं में 'हरिहर भजनमाला' विज्ञान भजनमाला व 'आदि हिन्दू भजनमाला' भी

हैं लेकिन ये रचनाएँ अब उपलब्ध नहीं हैं।[24] इलाहाबाद के रहने वाले एडवोकेट गुरु प्रसाद 'मदन' ने अपने पास अछूतानन्द साहित्य की पाण्डुलिपि होने की बात कही है लेकिन अभी तक यह साहित्य प्रकाशन की प्रतीक्षा में ही है।

स्वामी अछूतानन्द जी की प्रसिद्ध कृति 'आदिवंश का डंका' है जो आज उपलब्ध है, इसमें गीत, गज़ल, भजन, रसिया, कजरी, आदि शामिल है। 'आदिवंश का डंका' 'लोक छन्द' में रचित कृति है, 'चमनलाल जी के अनुसार 1983 तक उसके ग्यारह (11) संस्करण छप छुके हैं''[25] इस लघु संग्रह में 21 कविताएँ संकलित हैं। 1910 से 1927 के बीच लिखी गयी स्वामी अछूतानन्द की कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ निम्नलिखित हैं जो उनको हिन्दी दलित साहित्यकार सिद्ध करती हैं–

गज़ल–पुरखे हमारे थे बादशाह, वेद में भेद छिपा था, हम भी कभी थे अफजल

कव्वाली–'निशदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है।

कविता–'आदिवंश का डंका', 'सवर्णों को चेतावनी'

ख्याल–ये आदि हिन्दू, अछूत, पीड़ित दलित कहाँ तक पड़े रहेंगे?

कजरी–'हक बंटवइयों कि ना?

गीत–जागोजी जागो (थिएटर–ध्वनि)

स्वामी अछूतानंद अपना इतिहास बोध प्राप्त कर के साहित्य के माध्यम से उसे दलित समाज को संप्रेषित करते हैं ताकि उनमें भी जागरण आए। वे सोए हुए दलित समाज को जगाना चाहते हैं–

''सभ्य सबसे हिन्द के प्राचीन हकदार हम
था बनाया शूद्र हमको, थे कभी सरदार हम
अब नहीं है वह जमाना, जुल्म 'हरिहर' मत सहो
तोड़ दो जंजीर जकड़े क्यों गुलामी में रहो।''

आधुनिक दलित कवि 'स्वामी अछूतानन्द हरिहर' जानते हैं कि दलितों को मुक्ति न मिलने का राज क्या है? क्यों, उनको शिक्षा से वंचित रखा गया है? इसीलिए वे पोथी–पुराणों को जाली करार देते हैं–

''वेद में भेद छिपा था, हमें मालूम न था,
हाल पोशीदा रखा था, हमें मालूम न था,
ब्राह्मण पोथी पुराणों में निरी भरी उलझन,
फसाना जाली रचा था, हमें मालूम न था,
मनू ने सख्त थे कानून बनाए 'हरिहर'
पढ़ाना कतई मना था, हमें मालूम न था।''[26]

दलित साहित्य सोद्देश्य रचना की माँग करता है। स्वामी अछूतानन्द की रचनाएँ भी कुछ उद्देश्य लेकर चलती हैं। वे जानते हैं कि शोषण को रचने वाली व्यवस्था का आधार क्या है, इसीलिए लिखते हैं–

''निशदिन मनुस्मृति ये, हमको जला रही है,
ऊपर न उठने देती, नीचे गिरा रही है।
ब्राह्मण व क्षत्रियों को, सबको बनाया अफसर,
हमको 'पुराने उतरन पहनो' बता रही है।
ऐ हिंदू कौम सुन ले, तेरा भला न होगा,
हम बेकसों को हरिहर गर तू रुला रही है।''[27]
(कव्वाली)

स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' के बाद का 'हिन्दी दलित साहित्य' स्वयं 'स्वामी' जी के प्रभाव के कारण और डॉ0 अम्बेडकर के राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के कारण अपना वैचारिक धरातल 'ठोस' कर लेता है। 1960 में हो रहे मराठी दलित साहित्य लेखन से भी प्रेरणा लेकर हिन्दी के दलित साहित्यकार पूर्णतः 'अम्बेडकरवादी विचारधारा' से लैश होकर लेखन करने लगते हैं, जबकि इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा के अनुयायी साहित्यकारों में भी दलितों को शोषित

वर्ग मानकर सहानुभूति–जन्य प्रगतिवादी लेखन कहते हैं।

स्वामी अछूतानंद ने अपने जागरण गीतों, नाटकों के माध्यम से आधुनिक काल में दलित साहित्य की जो आधारशिला रखी उसको आगे बढ़ाने का काम आज के दलित साहित्यकार अपनी 'संस्थाओं' के माध्यम से कर रहे हैं। प्रो0 कालीचरण स्नेही के अनुसार ''सुपरिचित साहित्यकार डॉ0 सोहनपाल 'सुमनाक्षर' ने दिल्ली में राष्ट्रीय स्तर पर 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' का गठन कर के दलित साहित्यकारों को एक बहुत बड़ा साहित्यिक मंच प्रदान किया है। यह अकादमी हर वर्ष अपनी राज्य शाखाओं के माध्यम से दलित साहित्य पर संगोष्ठियाँ आयोजित करके, अकादमिक वातावरण बनाने में सफल रही है। इतना ही नहीं, दिल्ली में यह अकादमी, हर वर्ष एक विशाल दलित साहित्यकार सम्मेलन आयोजित करती है, जिसमें दलित साहित्य और समाजसेवा से जुड़े सभी भारतीय भाषाओं के प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को राष्ट्रीय पुरस्कार देकर सम्मानित भी करती है। अब इस समारोह में देश के साथ–साथ विदेशों से भी दलितोत्थान से जुड़ी महान हस्तियों को भी आमंत्रित कर पुरस्कृत किया जाता है। डॉ0 सुमनाक्षर जी ने इस अकादमी की शाखाएँ देश के साथ विदेशों में भी गठित की हैं। नेपाल और इंग्लैण्ड में विश्वस्तरीय दलित साहित्यकार सम्मेलन भी हो चुके हैं। इस अकादमी के द्वारा विश्व स्तर पर दलित साहित्य को प्रचारित करने में बड़ी भारी मदद मिली है।''[28] दलित साहित्य से जुड़ी यह संस्था आज विश्वफलक पर दलित साहित्य को प्रतिष्ठित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

भारतीय 'संस्थाओं' की विश्वव्यापी मुहीम से प्रभावित होकर विदेशों में बसे भारतीय मूल के दलित बुद्धिजीवियों द्वारा भी 'संस्थाएं' बनाकर 'दलित साहित्य' की मुहीम को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण काम किया जा रहा है। इस कड़ी में अमेरिका में बसे मा0 रामबाबू गौतम का योगदान अप्रतिम है। वे 'डॉ0 अम्बेडकर लिटरेरी विज़न' पोस्टबाक्स–9173, नार्थ बर्गन, न्यू जर्सी–07047 (अमेरिका) के संस्थापक अध्यक्ष हैं, उन्होंने अमेरिका में रहते हुए 'भारतीय दलित साहित्य' को बढ़ावा देने का अमूल्य संकल्प ले रखा है। उनके 'डॉ0 अम्बेडकर लिटरेरी विज़न' नामक संस्था के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. दलित साहित्य पर उपलब्ध महँगी पुस्तकों के सस्ते जन सुलभ पेपर बैक संस्करण प्रकाशित कराए जाएँ।
2. भारत के गाँवों में दलितों द्वारा जो साहित्य रचा जा रहा है, उसकी छोटी–छोटी पुस्तिकाएँ सस्ते मूल्य पर छपाकर जनता में वितरित की जाएँ।
3. दलित साहित्य पर केन्द्रित विभिन्न अंचलों में कवि सम्मेलन और कार्यशालाएँ आयोजित कराए जाएँ।
4. दलित बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों एवं समाजशास्त्रियों का ग्रुप बनाकर उनके बीच परिसंवाद आयोजित किया जाय, इस हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दलित फोरम का गठन हो।
5. भारत में जो दलित बुद्धिजीवी और उच्च व्यवसाय से संबद्ध व्यक्ति हैं वे अपने पैतृक गाँव में दलितोत्थान की दृष्टि से पुस्तकालय स्थापित करें।''[29]

मा0 रामबाबू गौतम की इस 'संस्था' के सहयोग से दलित साहित्य की उन पुस्तकों को छापने में आर्थिक सहायता मिलेगी जो क्षेत्रीय और ग्रामीण स्तर पर लिखी गयी हैं लेकिन अर्थाभाव के कारण 'प्रिन्ट–संस्कृति' से नहीं गुजर पा रही हैं। दलित साहित्य के लिए इस प्रकार का विदेशी आर्थिक सहयोग कम महत्वपूर्ण नहीं है। हिन्दी दलित साहित्य के प्रसिद्ध कवि डॉ0 कालीचरण 'स्नेही'

की प्रसिद्ध कृति 'जय भारत–जय भीम' की भी सस्ती प्रतियाँ छपवाकर आम जनता के बीच पहुँचाने का काम भी इसी 'साहित्यिक संस्था' के द्वारा हुआ है।

मध्यप्रदेश स्थित 'मध्य प्रदेश दलित साहित्य अकादमी' उज्जैन भी दलित साहित्य के क्षेत्र में सार्थक भूमिका निभा रही है। बकौल प्रो0 स्नेही ''इस अकादमी का उज्जैन में एक सुसज्जित भवन शासन द्वारा निर्मित करा दिया गया है। साथ ही म0प्र0शासन इसे अपनी गतिविधियाँ संचालित करने हेतु प्रतिवर्ष अनुदान देने लगा है। डॉ0 अवन्तिका प्रसाद 'मरमट' के नेतृत्व में यह अकादमी राष्ट्रीय पहचान बनाने में सफल रही है। दलित साहित्य पर लिखी पुस्तक पर प्रतिवर्ष एक राष्ट्रीय पुरस्कार भी इस अकादमी द्वारा प्रदान किया जाता है, अब इसे विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन ने 'शोध केन्द्र' के रूप में मान्यता भी प्रदान कर दी है।''[30] निश्चय ही 'दलित साहित्य' के लिए इन 'शोध केन्द्रों' का होना कम महत्वपूर्ण नहीं है। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में तो प्रो0 कालीचरण 'स्नेही' ने 'भारतीय दलित साहित्य शोध संस्थान – लखनऊ' की स्थापना करके इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल कर दिया है। वे इस शोध संस्थान के माध्यम से शोध को सार्थक सकारात्मक दिशा देने में जुटे हुए हैं।

अंग्रेजों की ग्रीष्मकालीन राजधानी रही 'शिमला' में 1888 ई0 में स्थापित 'वायसराय निवास' जो वर्तमान में 'भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला के नाम से जाना जाता है, इसको राष्ट्रीय स्तर के शोध केन्द्र के रूप में मान्यता प्राप्त है। अब तक दलित साहित्य को केन्द्र में रखकर राष्ट्रीय स्तर के दलित/गैरदलित बुद्धिजीवियों द्वारा दो राष्ट्रीय सेमीनार यहाँ सम्पन्न हो चुके हैं।

दलित साहित्य को केन्द्र में रखकर 14 अक्टूबर से 17 अक्टूबर 1997 तक चलने वाला पहला राष्ट्रीय सेमीनार 'ब्लैक और दलित लेखन : कुछ प्रवृत्तियाँ' विषय पर संपन्न हुआ। इस सेमीनार को आयोजित करने वालों में डॉ0 मृणाल गिरी, डॉ0 चमनलाल और डॉ0 हरीश नारंग आदि थे।''[31] लगातार चार दिन तक चलने वाले इस सेमीनार में देशभर से आए अखिल भारतीय स्तर के नामी गिरामी, दलित/गैरदलित, विभिन्न भाषाओं के लेखकों और विद्वानों ने हिस्सा लिया और गोष्ठी को जीवन्तता प्रदान की। जिन विद्वानों ने इस राष्ट्रीय सेमीनार में हिस्सा लिया। उनमें 'शरण कुमार लिंबाले, गंगाधर पानतावणे, चमनलाल, वीर भारत तलवार, गुरदयाल सिंह, धर्मवीर, ओम प्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, रमणिका गुप्ता, एन0सिंह, जयंत परमार, विमल थोरात, सुशीला टाकभौंरे, रणजीत साहा, कुँवर प्रसून''[32] आदि प्रमुख हैं।

दलित साहित्य को केन्द्र में रखकर दूसरा 'राष्ट्रीय सेमीनार', 'समकालीन भारतीय साहित्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा' : विशेष संदर्भ दलित साहित्य' विषय पर संपन्न हुआ। ''14 से 16 नवम्बर 2007 को गरमागरम बहसों के साथ सकुशल संपन्न हुए इस राष्ट्रीय सेमीनार के संयोजक 'भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास–शिमला' में प्रवेश पाने वाले पहले दलित फेलो मा0 श्यौराज सिंह 'बेचैन' जी थे, जिनके सार्थक एवं सकारात्मक प्रयत्नों के कारण यह आयोजन सफलतापूर्वक संपन्न हो सका।''[33] लगातार तीन दिनों तक चलने वाला यह राष्ट्रीय सेमीनार कुल दस सत्रों में विभाजित था। इस सेमीनार में यह निष्कर्ष निकलकर सामने आया कि ''दलित साहित्य केवल साहित्य नहीं बल्कि सत्ता विमर्श से जुड़ा एक आन्दोलन है।''[34] इस राष्ट्रीय सेमीनार में जिन प्रमुख विद्वानों ने भाग लिया उनमें प्रो0 अच्युतन, डॉ0 एस0के0विश्वास, डॉ0 सुशीला टाकभौरे, प्रो0 कालीचरण स्नेही, मूलचन्द गौतम, प्रो0 जयवन्ती डिमरी, मा0 दिनेश राम, मोहनदास नैमिशराय, डॉ0 रजनी वलिया, डॉ0 नामदेव, डॉ0 द्वारका

राजू, रूपचन्द गौतम, राजेश पासवान, बी0आर0विप्लवी, हरीश नारंग, ज्ञान सिंह बल, देवेन्द्र चौबे, अनिल घड़ाई, मूलचन्द सोनकर, यशवन्त वीरोदय आदि प्रमुख थे।

दलित अस्मिता एवं चेतना निर्माण को गति देने वाले ये सभी राष्ट्रीय सेमीनार, साहित्यिक संस्थाएं, अकादमियाँ इस अर्थ में उल्लेखनीय हैं कि इसमें वर्चस्ववादियों के खिलाफ प्रतिरोधी ताकतों की आवाज (दलित साहित्य) मुखर होती है और इस आवाज को सारे भारत के दलित/गैरदलित बुद्धिजीवी सुनते–गुनते हैं। इसमें उठे प्रश्नों को 'राष्ट्रीय आवाज' के रूप में 'देखा–परखा जाता है और विमर्श की नई जमीन भी तैयार होती है।

संदर्भ

1. ब्रजरंजन मणि– 'श्रमणवादी परम्परा मार्क्सवाद और फुले'–हंस, अगस्त 2002 पृष्ठ–31
2. प्रेमचन्द पातंजलि– 'महात्मा फुले : हमारे प्रेरणा–ोत'–हंस अगस्त 2004, पृष्ठ–78
3. ब्रजरंजन मणि– 'श्रमणवादी परम्परा मार्क्सवाद और फुले'–हंस, अगस्त 2002 पृष्ठ–31
4. वही, पृष्ठ–31
5. वही, पृष्ठ–31
6. वही, पृष्ठ–31
7. अजय कुमार– 'पेरियार ई0वी0 रामास्वामी नायकर', गौतम बुक सेन्टर, चन्दन सदन, सी–263–ए गली नं0–9, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली–110093, संस्करण–2009, पृष्ठ–113
8. वही, पृष्ठ–114
9. V. Geeta & S.V. Rajdirai-'Towards a Non-Brahmin Millennium: from. Iyothee Thass to Periyar, Samay Publisher, Calcutta, 1998, P-420.
10. बी0एल0 ग्रोवर तथा यशपाल–आधुनिक भारत का इतिहास–एक नवीन मूल्यांकन, ए0चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली–110055 संस्करण–1999, पृष्ठ–286
11. डी0 नागराज– 'आत्मशुद्धि बनाम आत्मसम्मान', पुस्तक–'आधुनिकता के आइने में दलित', सम्पादक–अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन प्रा0लि0 4697/5, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पृष्ठ–57, 58
12. ज्ञान सिंह बल– 'दलित चिंतन के वैचारिक आयाम'–युद्धरत आम आदमी, संपादक–रमणिका गुप्ता, रमणिका फांउडेशन, मेन रोड, हजारीबाग–825301 (झारखण्ड), दलित–दर्शन विशेषांक–2006 पृष्ठ–9
13. वही, पृष्ठ–9
14. गेल ओमवेट– 'स्वतंत्रता, समानता, सामुदायिकता का दर्शन', युद्धरत आम आदमी, संपादक–रमणिका गुप्ता, रमणिका फांउडेशन , मेन रोड, हजारीबाग–825301 (झारखण्ड), दलित–दर्शन विशेषांक–2006 पृष्ठ–25
15. वही, पृष्ठ–26
16. 'परिवर्तन' – संपादक – प्रो0 कालीचरण स्नेही, संत रैदास साहित्य कला केन्द्र फीरोजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत – 2008, पृ0 76
17. महेन्द्र प्रताप राना – बहुरि नहिं आवना, प्रवेशांक, सितम्बर नवंबर 2008 एफ–345,

बैंक वाली गली, लाडो सराय नई दिल्ली – 110030, पृ0 16

18. मैनेजर पाण्डेय–हिन्दी साहित्य में दलित चेतना–हंस, अक्टूबर 1992 पृष्ठ–72

19. चमनलाल–'हिन्दी दलित कविता का वर्तमान और सच', 'कविता के सौ बरस' सं0 लीलाधर मंडलोई, शिल्पायन संस्करण–2001, पृष्ठ–525

20. मैनेजर पाण्डेय–साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका–1989 संस्करण हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ पृष्ठ–12

21. मदन कश्यप–'अछूत की शिकायत' – 'कविता के सौ बरस' सं0 लीलाधर मंडलोई, शिल्पायन, दिल्ली, सं0–2001, पृष्ठ–45

22. वही, पृष्ठ–45

23. वही, पृष्ठ–45

24. चमन लाल–'हिन्दी दलित कविता का वर्तमान और सच', पुस्तक–कविता के सौ बरस, शिल्पायन, दिल्ली सं0–2001 पृष्ठ–524

25. वही, पृष्ठ–524

26. स्वामी अछूतानंद की रचनाएं–हंस, अगस्त–2004, पृष्ठ–189

27. वही, पृष्ठ–188

28. प्रो0 कालीचरण 'स्नेही' – 'हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता' – आराधना ब्रदर्स 124/152 सी–गोविन्द नगर, कानपुर – 208006, सं0 – 2004, पृ0 11, 12

29. राम बाबू गौतम – 'भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करती साखियाँ' (भूमिका) पुस्तक – 'जय भारत – जय भीम', कालीचरण 'स्नेही', डॉ0 अम्बेडकर लिटरेरी विज़न, पोस्ट बाक्स 9173, नार्थ वर्गन न्यू जर्सी – 07047 (अमेरिका), पृ0 3

30. प्रो0 कालीचरण 'स्नेही' – 'हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता' सं0 2004, पृ0 12

31. शरण कुमार लिंबाले – 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' वाणी प्रकाशन 21 ए, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, सं0 2005, पृ0 21

32. 'दलित और अश्वेत साहित्य कुछ विचार' (संपादक – चमनलाल) भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला सं0 – 2001, पृ0 6

33. राष्ट्रपति निवास शिमला से यशवन्त वीरोदय की रिपोर्ट, अम्बेडकर टुडे, दिसम्बर 2007, पृ0 59

34. वही, पृ0 59

Copyright © 2015, Dr.Yashvant Veeroday. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.